यदि वेदांत से आशय ज्ञान के अंत से है, जैसा कि इस शब्द से अर्थ निकलता है, वेदों का अंत, जो कि ज्ञान हैं – तब मुझे ज्ञान अर्जित करने के श्रमसाध्य कार्य से गुज़रने की क्या आवश्यकता है? और फिर उसके बाद उसे त्यागने की?

जे. कृष्णमूर्ति

जे. कृष्णमूर्ति परिसंवाद
सितंबर 2008
कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया का त्रैमासिक हिंदी पत्र
मार्च, जून, सितंबर एवं दिसंबर में प्रकाशित
वार्षिक शुल्कः रु. 100.00 आजीवन शुल्कः रु. 1000.00
संपादक : कृष्णनाथ
सहसंपादक : मुकेश

इस अंक में:

खंड : 1
वेदांत यानी कि सारे ज्ञान का अंत... 4

खंड : 2
के.एफ.आई. गैदरिंग 32

देखना, अवलोकन करना कितना ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, हम उस दिन यह बात कर रहे थे। यह एक ऐसी कला है जिस पर आपको अत्यधिक ध्यान देना होगा। हमारा देखना आधा-अधूरा होता है, पूरे तौर पर, पूरे मन या हृदय से हम कुछ भी नहीं देखते। जब तक हम इस असाधारण कला को नहीं सीखते मुझे ऐसा लगता है कि हम मन के एक बहुत ही छोटे दायरे में, मस्तिष्क के एक छोटे से हिस्से में ज़िंदगी जी रहे होंगे। तमाम वजहों से हम किसी भी चीज़ को पूरेपन के साथ नहीं देखते, या तो हम अपनी ही समस्याओं से घिरे रहते हैं, या अपने विश्वासों, अपनी परंपराओं, अपने अतीत से इतने ज्यादा संस्कारबद्ध और बोझिल होते हैं कि हमारा देखना-सुनना वास्तव में नहीं हो पाता। किसी वश्क्ष को हम नहीं देख पाते, उसे देखते भी हैं तो अपने मन में समायी उस वश्क्ष की छवि और धारणा के साथ। लेकिन धारणा, जानकारी और अनुभव का उस वास्तविक वश्क्ष से कोई लेनादेना नहीं होता। सौभाग्य से हम यहां इतने सारे वश्क्षों से घिरे हैं। आप अगर अपने चारों ओर देखें, जैसा कि यह वक्ता कर रहा है, अगर आप सचमुच इन वश्क्षों की ओर देखें तो आपको पता चलेगा कि इस तरह इनको देखना कि बीच में कोई छवि, कोई आड़ और आवरण न आने पाये कितना ज्यादा मुश्किल है। कृपया मेरी तरफ न देखें बल्कि ऐसा करें, उन वश्क्षों की ओर देखें और पता लगाएं कि आप संपूर्णता से उनको देख सकते हैं कि नहीं। संपूर्णता से मेरा मतलब है कि मन और हृदय के समूचेपन के साथ, किसी छोटे से हिस्से के साथ नहीं। क्योंकि आज शाम जो हम करने जा रहे हैं उसके लिए इस तरह का अवलोकन, इस तरह का देखना बेहद ज़रूरी है। जब तक आप वास्तव में ऐसा नहीं कर पाते, बिना किसी

सैद्धांतिकता, बौद्धिकता और ऐसी तमाम बेकार की चीज़ों में पड़े, मुझे नहीं लगता कि आज जो हम साथ-साथ करने जा रहे हैं उसे आप बारीकी से समझ पाएंगे।

दूसरा क्या कह रहा है न कभी हम यह देखते हैं और न सुनते हैं। हम या तो भावुक होते हैं या बहुत अधिक बौद्धिक – यह हमें प्रकाश के, वृक्षों के, पक्षियों के रंगों को, उनकी ख़ूबसूरती को सचमुच देखने से रोक देता है, उन कौवों को सुनने से रोक देता है। इनमें से किसी के भी साथ हमारा सीधा रिश्ता नहीं है। और मुझे इस बात में भी बहुत अधिक शक है कि हमारा किसी भी चीज़ के साथ कोई सीधा रिश्ता है, यहां तक कि हमारे अपने ही विचारों, धारणाओं, उद्देश्यों एवं अपने ही ऊपर पड़ रहे प्रभावों के साथ। हमारा जो भी देखना है, यहां तक कि खुद को देखना भी, हमेशा छवियों, प्रतिमाओं के ज़रिये होता है।

इसलिए यह समझना बेहद ज़रूरी है कि देखने की क्रिया ही एकमात्र सत्य है, और कुछ भी नहीं। यदि मुझे किसी वृक्ष को, पक्षी को, या किसी सुंदर चेहरे को या किसी बच्चे की मुस्कान को देखना आता है तो यही सब कुछ है, मुझे और कुछ करने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन किसी पक्षी या पत्ती को देखना, पक्षियों के कलरव को सुनना उन छवियों के चलते लगभग नामुमकिन हो जाता है जो हमने न केवल प्रकृति के बारे में बल्कि अपने बारे में भी बना रखी होती हैं। ये छवियों सच में हमें देखने और महसूस करने से रोकती हैं। यहां महसूस करने का अर्थ भावुकता और भावनाओं से बिलकुल अलग है।

जैसा कि हमने कहा हम हर चीज़ को खंडित करके देखते हैं तथा बचपन से ही हमें एक आंशिक दायरे में देखना, निरीक्षण करना, सीखना या जीना सिखाया जाता है। जबकि मन का एक विशाल क्षेत्र अछूता ही रह जाता है,

उसको हम जान ही नहीं पाते। वह मन अत्यंत विस्तश्त, असीम है, और हम उसको कभी स्पर्श नहीं करते, उसके गणधर्म या स्वभाव को कभी जान नहीं पाते क्योंकि हम किसी भी चीज़ को पूरी तरह से, समूचे मन और हृदय से, अपनी सारी की सारी शिराओं, रोओं-रोओं से, अपनी पूरी आंखों और कानों से नहीं देखते-सुनते हैं। हमारे लिए शब्दों और ध ाारणाओं की सबसे ज्यादा अहमियत है न कि देखने और करने की। लेकिन धारणा के रहते - जो कि एक विश्वास, एक मत है - हम न वास्तव में देख पाते हैं, न कर्म कर पाते हैं। और तब हमारे सामने क्या करें और क्या न करें की समस्या खड़ी होती है, कर्म और धारणा के बीच का द्वंद्व खड़ा होता है।

कृपया वक्ता के शब्दों को न सुनते रहें बल्कि वह जो कह रहा है उसका अपने भीतर निरीक्षण करें, वक्ता को एक आईना बनाते हुए खुद को उसमें देखें। वक्ता को जो कहना है उसका उतना महत्त्व नहीं है, और खुद वक्ता का कोई महत्त्व नहीं है, लेकिन अपना निरीक्षण करते हुए आप जो कुछ सीखते, ग्रहण करते हैं उसका ही महत्त्व है। ऐसा इसलिए कि हमारे दिलो-दिमाग में, हमारे जीने के तौर-तरीकों में, हमारी भावनाओं और हमारे दैनिक जीवन के क्रियाकलापों में एक समग्र क्रांति, एक संपूर्ण परिवर्तन बेहद ज़रूरी है। और ऐसा मूलभूत, गहरा परिवर्तन लाना तभी संभव है जब हमें यह पता हो कि देखा कैसे जाता है। क्योंकि जब आप सच में देख रहे होते हैं तो वह देखना महज आंखों के ज़रिये नहीं होता बल्कि उसमें आपका पूरा मन-मस्तिष्क शामिल होता है। पता नहीं आपमें से किसी ने कभी कार चलाई है या नहीं, जब आप कार चला रहे होते हैं तो आप न केवल सामने से आ रही कार को आंखों से देख रहे होते हैं बल्कि आपका मस्तिष्क दूर सड़क के मोड़ को, किनारे की सड़क को तथा आती-जाती और गाड़ियों का भी निरीक्षण कर रहा

होता है। इस प्रकार का देखना सिर्फ आंखों और आपकी तंत्र-तंत्रिकाओं के ज़रिये नहीं होता बल्कि आपके पूरे हृदय और मस्तिष्क से होता है, और आप इस ढंग से पूरी तरह तब तक नहीं देख सकते हैं जब तक आप समूचे मस्तिष्क के एक छोटे हिस्से में ही जी रहे होते हैं, काम कर रहे होते हैं, सोच रहे होते हैं।

देखिए पूरे विश्व में क्या हो रहा है - जिस समाज और संस्कृति में हम रह रहे हैं उसके द्वारा हम संस्कारबद्ध हो रहे हैं। और उस संस्कृति को मनुष्य ने बनाया है, और उसमें कुछ भी पवित्र, अलौकिक या शाश्वत नहीं है। संस्कृति, समाज, पुस्तकों, रेडियो, जो कुछ भी हम सुनते-देखते हैं, वे तमाम प्रभाव जो हम पर पड़ते हैं जिनके बारे में हमें पता होता है या नहीं पता होता, वे सभी हमें मन के विशाल क्षेत्र के एक छोटे से दायरे में ही जीने के लिए प्रेरित करते हैं। आप स्कूल, कॉलेज जाते हैं, जीविका के लिए कोई तकनीक सीखते हैं; और आगे के चालीस या पचास साल आप अपना जीवन, अपना समय, अपनी ऊर्जा उस छोटे से विशेष क्षेत्र में खर्च कर देते हैं। जबकि मन का विशाल क्षेत्र है। जब तक हम मन के उस आंशिक क्षेत्र में मूलभूत परिवर्तन नहीं लाते कोई क्रांति हो ही नहीं सकती। हां, कुछ आर्थिक, सामाजिक और तथाकथित सांस्कृतिक फेरबदल हो सकते हैं लेकिन मानव की पीड़ा का अंत नहीं होगा, उसके दुख, संताप, निराशा का अंत नहीं होगा, उसके द्वंद्वों और युद्धों का अंत नहीं होगा।

पता नहीं आपने कुछ दिन पहले ऐसी ख़बर पढ़ी थी या नहीं कि रूस की आर्मी के एक मार्शल ने पोलित ब्यूरो को बताया कि अब वे सैनिकों को सम्मोहन के ज़रिये ट्रेनिंग दे रहे हैं। इसका मतलब जानते हैं आप? आपको सम्मोहन में रखकर यह सिखाया जाता है कि कैसे मारा जाए, कैसे

पूर्णतया आदेशों का पालन किया जाए, पूरी आज़ादी के साथ लेकिन एक दायरे में और अपने से ऊपर के अधिकारी के नीचे, कैसे काम किया जाए। संस्कृति और समाज आज हममें से हरेक के साथ बिलकुल यही कर रहे हैं। संस्कृति और समाज ने आपको सम्मोहित कर दिया है। कृपया इसे बहुत ध्यान से सुनें क्योंकि ऐसा केवल रूस की आर्मी में ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में हो रहा है। जब आप गीता को, या कुरान को या किसी मंत्र को लगातार दोहराते हैं तो आप बस यही करते हैं। जैसे ही आपने कहा कि मैं हिंदू हूं, या बौद्ध हूं, या मुस्लिम, या कैथलिक, तो आप उसी एक पैटर्न को दोहराते हैं, आप सम्मोहित हो चुके होते हैं। टैक्नोलॉजी भी तो यही कर रही है। आप एक चालाक वकील होंगे, या प्रथम श्रेणी के इंजीनियर, या आर्टिस्ट, या कोई महान वैज्ञानिक लेकिन आप हमेशा समग्र के एक छोटे से अंश के अंदर काम कर रहे होते हैं। पता नहीं आप इसे देख पा रहे हैं या नहीं, इसलिए नहीं कि मैं इसे समझा रहा हूं, बल्कि इसे आप सच में देख रहे हैं। कम्युनिस्ट यह कर रहे हैं, पूंजीवादी यह कर रहे हैं, हर कोई, माता-पिता, स्कूल, शिक्षा, ये सभी एक ढांचे में, एक दायरे में कार्य करने के लिए मन को तैयार कर रहे हैं। और हम सदा एक ढांचे के अंतर्गत, एक दायरे में परिवर्तन लाने की कोशिश करते हैं।

तो हमें इसका अहसास कैसे हो, विचार के तौर पर नहीं बल्कि सचमुच – आप समझ रहे हैं न? – यानी वास्तविकता को देखना? वास्तविकता से मायने जो कुछ रोज़ाना हो रहा है, अख़बारों में जिसकी चर्चा हो रही है, राजनेता जिसकी बात कर रहे हैं, संस्कृति और परंपरा जिसकी बात कर रहे हैं, परिवारों में जिसकी चर्चा है, जिसके चलते आप खुद को हिंदुस्तानी या कुछ और मानते हैं। जब आप यह देखेंगे तो आप अपने ऊपर सवाल ज़रूर उठाएंगे।

(मुझे यकीन है कि आप ऐसा करेंगे, यदि आप इसे देख लेते हैं तो।) इसलिए यह समझना इतना ज़रूरी है कि आप कैसे देखते हैं। अगर आप सचमुच देखते हैं तो सवाल होगाः कैसे पूरा का पूरा मन कार्य करे? मेरा मतलब न तो खंडित, संस्कारबद्ध मन से है, न ही शिक्षित, परिष्कृत मन से है जो कि भयभीत रहता है, जो कहता है : भगवान है या भगवान नहीं है, यह मेरा परिवार है, यह आपका परिवार है, यह मेरा राष्ट्र है और यह आपका राष्ट्र है। तब आप पूछेंगे, ''मन की ऐसी समग्रता कैसे आए, कैसे वह संपूर्णता से कार्य कर सके, उस समय भी जब वह कोई तकनीक सीख रहा हो।'' हालांकि उसे इस अव्यवस्थित समाज में दूसरों के साथ संबंधित होकर रहना है और साथ ही कोई कार्य भी सीखना है, यह ध्यान में रखते हुए एक मूलभूत सवाल यह उठता है कि कैसे समूचे मन को पूर्णतया संवेदनशील बनाया जाए ताकि उसका एक अंश भी संवेदनशील हो जाए।'' पता नहीं आप मेरा प्रश्न समझ पा रहे हैं या नहीं। हम इस पर और तरीके से आएंगे।

फिलहाल तो हम संवेदनशील नहीं हैं। हम कुछ-कुछ जगहों पर संवेदनशील हैं, हम तब संवेदनशील हैं जब हमारे व्यक्तित्व के किसी ख़ास हिस्से पर, हमारी किसी व्यक्तिगत बात पर, या हमारे किन्हीं सुखों पर चोट पहुंचती है - तब लड़ाई शुरू होती है। हम कुछ जगहों पर, आंशिक तौर पर संवेदनशील होते हैं, पूर्ण रूप से तो संवेदनशील होते ही नहीं। अतः प्रश्न है कि, हम कैसे उस अंश को भी जो कि पूर्ण का हिस्सा है और जिसे दिन पर दिन दोहराते-दोहराते मंद, नीरस बना दिया गया है, संपूर्ण के साथ-साथ उसको भी कैसे संवेदनशील बनाया जाए?'' क्या यह सवाल पूरी तरह स्पष्ट है? ज़रूर बताएं।

शायद यह प्रश्न आपके लिए नया है। शायद आपने अपने से कभी ऐसा सवाल नहीं पूछा है। क्योंकि हम सभी

जितना कम से कम परेशानी और झगड़ा हो उसी से संतुष्ट रहते हैं, जो हमारा जीवन है उसके एक छोटे से हिस्से में रहते हुए, और इस छोटे से हिस्से की अद्‌भुत संस्कृति का गुणगान बाकी की पश्चिमी, प्राचीन आदि संस्कृतियों की तुलना में करते रहते हैं। एक अति विशाल क्षेत्र के एक अत्यंत छोटे से कोने में रहने के क्या मायने हैं इसका अहसास तक हमें नहीं होता। उस छोटे से दायरे की हमें कितनी गहरी चिंता है यह हम खुद से नहीं देख पाते, और उसी दायरे में, उस छोटे से कोने में हम ज़िंदगी की समस्याओं का हल ढूंढ़ने की कोशिश करते हैं। हम खुद से पूछ रहे हैं कि वह मन जो कि अभी इतने विशाल क्षेत्र में आधा सोया हुआ है क्योंकि हमारी सारी चिंता एक छोटे से दायरे को लेकर है, वह कैसे इस सबके प्रति पूर्णतया सजग हो जाए, पूर्णतया संवेदनशील बन जाए?

अब पहली बात तो यह है कि इसका कोई तरीका नहीं है। क्योंकि कोई भी तरीका, कोई भी उपाय, कोई भी दुहराव या आदत, उस छोटे से दायरे का ही अंश होगा। क्या हम साथ-साथ चल पा रहे हैं, साथ-साथ यात्रा कर पा रहे हैं, या आप पीछे छूटते जा रहे हैं? पहले तो हमें उस दायरे की वास्तविकता को देखना होगा और उसकी क्या-क्या मांगें हैं यह देखना होगा। तब हम यह सवाल रख पाएंगे : ''हम कैसे समूचे क्षेत्र को पूर्ण रूप से संवेदनशील बना सकते हैं?'' क्योंकि तभी सच्ची क्रांति हो पाएगी। पूरा का पूरा मन जब पूर्ण रूप से संवेदनशील होगा तब हम अलग ढंग से बर्ताव करेंगे, हमारा सोचना, महसूस करना, बिलकुल ही दूसरे आयाम का होगा। लेकिन इसका कोई तरीका नहीं है। यह मत कहिए कि मैं कैसे वहां तक पहुंचूं, कैसे संवेदनशील बनूं, आप किसी कॉलेज में जाकर, कोई किताब पढ़कर, कुछ

अभ्यास कर के संवेदनशील नहीं बन सकते। यही सब तो आप अपने छोटे से दायरे में करते रहे हैं जिसने आपको ज्यादा से ज्यादा संवेदनहीन बना दिया है। इसे आप अपने दैनिक जीवन में देख सकते हैं जहां इतनी कठोरता, निर्दयता और हिंसकता है। पता नहीं पत्र-पत्रिकाओं में आपने घायल अमेरिकी और वियतनामी सैनिकों की तस्वीरों को देखा है। आप उनको देखकर कह देंगे, ''बहुत दुख हुआ'', लेकिन आपको कोई फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि यह घटना आपके साथ, या आपके परिवार के साथ, या आपके बेटे के साथ नहीं हुई है। तो हम कठोर इसलिए हो जाते हैं कि हम एक तंग, संकीर्ण दायरे में जीते हैं, काम करते हैं।

कृपया यह अच्छी तरह समझ लें कि इसका कोई तरीका नहीं है, कोई विधि नहीं है, क्योंकि जब आपकी यह समझ में आ जाता है तो अधिसत्ता के असीम बोझ से, और इस प्रकार अतीत से, आप स्वतंत्र हो जाते हैं। पता नहीं आप इसे देख पा रहे हैं या नहीं। हमारी संस्कृति में अतीत समाया हुआ है, यानी कि परंपरा, विश्वास, स्मशतियां और इनके प्रति निष्ठा, जिसे हम इतना महान समझते हैं। और जैसे ही आपको इसका अहसास होगा कि इस संकीर्ण दायरे से मुक्त होने की कोई विधि, कोई प्रणाली नहीं है, इस सबको आप पूरी तरह से हमेशा के लिए एक तरफ हटा देंगे। लेकिन आपको उस छोटे से दायरे के बारे में सब कुछ सीखना पड़ेगा। तब आप उस बोझ से मुक्त हो जाएंगे जो आपको संवेदनहीन बनाता है। सैनिकों को मारना सिखाया जाता है, निर्दयता से उन्हें दिन पर दिन कवायद करनी होती है, ताकि उनमें जरा भी मानवीय संवेदना बची न रह जाए। ऐसा ही कुछ पूरे संसार में हममें से हरेक के साथ हर रोज, हर समय, किया जा रहा है, अख़बारों के ज़रिये, राजनीतिज्ञों, गुरुओं, पादरियों और पोप के ज़रिये।

अब चूंकि कोई तरीका नहीं है, कोई विधि नहीं है तो व्यक्ति क्या करे? विधि का मतलब है अभ्यास, निर्भरता, मेरा तरीका और आपका तरीका, उसका मार्ग, मेरा मार्ग, मेरा गुरु जो थोड़ा बेहतर जानता है, यह गुरु पाखंडी है और वह नहीं है – पर आप इस बात पर शुरू से ही भरोसा कर सकते हैं कि सारे के सारे गुरु पाखंडी होते हैं, चाहे वे तिब्बती लामा हों या कैथलिक या हिंदू – वे सारे के सारे दिखावटी हैं क्योंकि वे सभी उस छोटे से क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं जो इतना घिसपिट गया है और नष्ट हो चुका है।

कोई क्या करे? मेरा प्रश्न समझे आप? समस्या यह है : मन की गहराई और निस्सीमता का हमें पता नहीं है। आप इस बारे में किताबें पढ़ लें, आधुनिक मनोविज्ञानियों का अध्ययन कर लें, या प्राचीन गुरुओं का – उन पर भरोसा मत करिये क्योंकि आपको खुद ही यह सब पता लगाना होगा, किसी और के अनुसार आपको खोजबीन नहीं करनी है। आपको मन के बारे में कुछ नहीं पता है इसलिए आपकी इसके बारे में कोई धारणा भी नहीं होनी चाहिए। आप समझ रहे हैं यहां जो कहा जा रहा है? आपके पास इसके बारे में कोई भी विचार, कोई भी मत या जानकारी नहीं हो सकती है। इस तरह आप किसी भी पूर्व कल्पना से, किसी भी धार्मिक मत से स्वतंत्र हैं।

फिर वही सवाल कि कोई क्या करे? हम बस इतना ही कर सकते हैं कि हम देखें। हम अपने उस संकीर्ण दायरे को देखें, अपने छोटे से घर को जिसे हमने उस निस्सीम क्षेत्र के एक छोटे से कोने में बना लिया है और जिसमें हम आपस में लड़ रहे हैं, मारामारी कर रहे हैं, चीज़ों को सुधार रहे हैं – आपको तो पता ही है वह सारा कुछ – उसे बस देखें। इसलिए यह समझना बेहद ज़रूरी है कि देखने का क्या अर्थ है क्योंकि जैसे ही कोई द्वंद्व आया कि आप उस खंडित दायरे

के हिस्से बन गये। इसलिए हमें बिलकुल शुरू से – शुरू से नहीं बल्कि अभी – सीखना होगा कि देखना क्या है। कल नहीं क्योंकि कल है ही नहीं – सुख की तलाश, भय या कष्ट के कारण ही ''कल'' का आविष्कार किया जाता है। मानसिक तौर पर वास्तव में कल होता ही नहीं है किंतु मस्तिष्क, यह मन समय का आविष्कार कर लेता है। हम इस सबमें बाद में जाएंगे।

इसलिए हम जो कर सकते हैं वह है देखना। अगर आप संवेदनशील नहीं हैं तो आप नहीं देख सकते हैं, और अगर आपके और देखी गयी चीज़ के बीच कोई छवि है तो आप संवेदनशील नहीं हैं। आप समझ रहे हैं? अतः देखना प्रेम की क्रिया है। आपको पता है समूचे मन को क्या चीज़ संवेदनशील बनाती है? – एकमात्र प्रेम। आप कोई तकनीकी कौशल सीखते हुए भी प्रेम कर सकते हैं, लेकिन अगर आपके पास केवल तकनीकी ज्ञान है और प्रेम नहीं है तो आप विश्व का विनाश करने जा रहे हैं। इसे अपने भीतर देखिए सर, अपने मन और हृदय में उतर कर देखिए, आप इसे खुद-ब-खुद देख लेंगे। देखना, अवलोकन करना, सुनना – सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य हैं। अगर आप अपने छोटे से कोने से झांक कर देख रहे हैं तो आपका देखना नहीं हो पाएगा, विश्व में क्या हो रहा है आप नहीं देख पाएंगे, निराशा, दुश्चिंता, कराहता अकेलापन, मांओं, पत्नियों, प्रेमियों और जो मारे जा चुके हैं उनके आंसुओं को आप नहीं देख पाएंगे। लेकिन आपको यह सब देखना पड़ेगा, बिना भावुक हुए, बिना यह कहे कि ''मैं तो युद्ध के खिलाफ हूं'', या ''मैं युद्ध के समर्थन में हूं'', क्योंकि भावुकता सबसे विनाशकारी चीज़ों में से एक है, वहां पर तथ्यों को भुला दिया जाता है, जो है को नज़रअंदाज कर दिया जाता है। इसलिए देखना सबसे महत्त्वपूर्ण है। देखना ही समझना है; मन के ज़रिये, बुद्धि के ज़रिये, या

किसी अंश के ज़रिये आप नहीं समझ सकते। मन जब पूर्णतः शांत होता है, अर्थात जब कोई छवि नहीं होती, केवल तभी बोध होता है।

देखना सारे अवरोधों को नष्ट कर देता है। देखिए सर, जब तक आपके और वश्क्ष के बीच विभाजन है, मेरे और आपके बीच, आपके और पड़ोसी के बीच अलगाव है – अब वह पड़ोसी चाहे हज़ार मील दूर हो या आपके बगल में – तो द्वंद्व निश्चित रूप से होगा ही। अलगाव का मतलब है द्वंद्व, यह इतनी सीधी सी बात है। हम द्वंद्व में ही जिये हैं, द्वंद्व, संघर्ष और विभाजन के हम आदी हैं। भारत को आप एक इकाई के रूप में देखते हैं, भौगोलिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक इकाई के रूप में, और इसी प्रकार पूरे यूरोप को, अमेरिका और रूस को – अलग–अलग इकाइयों के रूप में जिसमें हर इकाई दूसरी इकाई के ख़िलाफ है, और यह सारा विभाजन युद्ध तो पैदा करेगा ही। इसके मायने यह नहीं है कि हम सभी को एक मत हो जाना है, या अगर असहमति है तो मुझे लड़ाई करनी है; जब कोई चीज़ जैसी है उसको वैसा ही देख लिया जाता है तो फिर सहमति–असहमति का प्रश्न नहीं उठता। जो कुछ आप देखते हैं उसके बारे में जब आप कोई राय बना लेते हैं, सिर्फ तभी असहमति होती है, अलगाव होता है। जब मैं और आप यह देख लेते हैं कि यह चांद है तो कोई असहमति नहीं होती, वह चांद ही होता है। लेकिन अगर आपको यह कुछ और नज़र आता है और मुझे कुछ और, तो अलगाव का होना और इस प्रकार द्वंद्व का होना तय है। अतः एक दरख़्त को जब आप सचमुच देख लेते हैं तो कोई आपके और दरख़्त के बीच कोई अलगाव नहीं रह जाता, वहां कोई देखने वाला नहीं बचता।

हम लोग एक बहुत ही विद्वान चिकित्सक से बात कर रहे थे जिन्होंने एल.एस.डी. मादक द्रव्य का अल्पमात्रा में सेवन किया था। उनके साथ टेप रिकॉर्डर लिये दो चिकित्सक और थे। कुछ सेकेंड के बाद उन्होंने मेज पर रखे फूलों को देखा, उनके और फूलों के बीच कोई स्पेस, कोई अंतराल नहीं रह गया था। इसका यह मतलब नहीं कि उन फूलों से वे एकाकार हो गये थे, बल्कि उनके बीच कोई स्पेस नहीं रह गया था, जिसका अर्थ हुआ कि कोई द्रष्टा नहीं था। हम यह नहीं कह रहे हैं कि आपको एल.एस.डी. लेनी चाहिए क्योंकि उसके अपने घातक प्रभाव होते हैं, और साथ ही जब आप ऐसी चीज़ें लेने लगते हैं तो उनके गुलाम बन जाते हैं। इसके अलावा एक बहुत ही सीधा, सरल और नैसर्गिक तरीका है कि आप स्वयं किसी वृक्ष का, फूल का, या चेहरे का अवलोकन करें; उनमें से किसी का भी आप इस तरह अवलोकन करें कि आपके और उसके बीच कोई फासला न रहे। और इस तरह आप तभी देख पाएंगे जब प्रेम होगा – इस शब्द का कितना दुरुपयोग हो चुका है।

फिलहाल हम प्रेम के सवाल पर नहीं जाएंगे। किंतु जब आपके साथ वास्तविक अवलोकन होता है, सचमुच का देखना होता है, तब उस देखने के साथ अद्‌भुत ढंग से समय और अंतराल का अंत होता है और यह तब होता है जब प्रेम होता है। और बिना सौंदर्य बोध के आपके पास प्रेम नहीं हो सकता। आप सौंदर्य के बारे में बातचीत भले कर लें, उसके बारे में लिख लें, कुछ आकृति बना लें, लेकिन अगर प्रेम न हो तो कुछ भी सुंदर न होगा। प्रेम के बिना होने का मतलब है पूर्ण रूप से संवेदनशील न होना। और चूंकि आप पूर्ण रूप से संवेदनशील नहीं हैं इसलिए आप विकृत हो रहे हैं, भ्रष्ट हो रहे हैं। यह देश विकृत हो रहा है। ऐसा मत कहिए, ''क्या दूसरे देश विकृत नहीं हो रहे हैं?'' – वे हो रहे हैं, पर यह देखिए कि आप विकृत हो रहे हैं, भले ही आप

तकनीकी तौर पर एक शानदार इंजीनियर हों, बेजोड़ वकील हों, टेक्नीशियन हों, कम्प्यूटर चलाना जानते हों, पर सबके बावजूद आप विकृत हो रहे हैं क्योंकि जीने की समूची प्रक्रिया के प्रति आप संवेदनशील नहीं हैं।

हमारी मूल समस्या तब यह नहीं है कि युद्धों को कैसे रोकें, कौन सा भगवान दूसरे से अच्छा है, कौन सा राजनीतिक ढांचा या आर्थिक ढांचा बेहतर है, या कौन सा दल वोट देने लायक है – वे सारे के सारे धूर्त हैं – हमारी मूल समस्या यह है कि मानव चाहे वह अमेरिका में हो, हिंदुस्तान में या रूस में, वह उस संकीर्ण दायरे से मुक्त है कि नहीं। और वह संकीर्ण दायरा हम ही हैं, आपका छोटा सा घटिया दिमाग ही है। हमने ही उस दायरे को बनाया है, क्योंकि हमारे अपने छोटे-छोटे दिमाग ही बंटे हुए हैं, खंड-खंड हैं और इस कारण से समग्र के प्रति संवेदनशील होने में असमर्थ हैं; हम उस छोटे से हिस्से को महफूज, शांत, तसल्ली और सुख देने वाला बनाना चाहते हैं ताकि हर दुख-कष्ट से बचा जा सके, क्योंकि बुनियादी तौर पर हम सुख की ही तलाश में हैं। और अगर आपने सुख की, अपने सुख की, जांच-पड़ताल, छानबीन की है, उसका निरीक्षण किया है, तो आप देखेंगे कि जहां-जहां सुख है वहां दुख ज़रूर है। एक के होने पर आप दूसरे से बच नहीं सकते हैं, इसके बावजूद आप हमेशा और ज्यादा सुख की मांग करते हैं और इस तरह और ज्यादा पीड़ा को बुलावा देते हैं। और इसी भूमि पर हमने उस चीज़ का निर्माण कर लिया है जिसे हम मानव जीवन कहते हैं। देखने का अर्थ है इसके अंतरतम संपर्क में होना, और आप इसके गहन, वास्तविक संपर्क में तब तक नहीं हो सकते जब तक आपने धारणाएं, विश्वास, मत और सिद्धांत बनाए हुए हैं।

तो जो महत्त्वपूर्ण है वह है देखना और सुनना, न कि सीखना। पक्षियों को सुनिये, अपनी पत्नी की आवाज़ को सुनिये चाहे वह कितनी ही कर्कश, ख़ूबसूरत या बदसूरत हो, और आप अपनी आवाज़ को भी सुनिये चाहे वह कितनी ही अच्छी, बुरी या अधीरतापूर्ण हो। इस सुनने में आपको पता चलेगा कि द्रष्टा और दश्श्य के बीच का सारा विभाजन ख़त्म हो गया। इसलिए कोई संघर्ष नहीं है, कोई द्वंद्व नहीं है, और आप इतनी सावधानी के साथ अवलोकन कर रहे हैं कि वह अवलोकन ही अनुशासन है; आप अनुशासन आरोपित नहीं कर रहे हैं। और वही सौंदर्य है, श्रीमान, यदि आप इसे महसूस कर सकें, वही देखने का सौंदर्य है। यदि आप देख सकते हैं तो आपको कुछ और करने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि उस देखने में सारा अनुशासन है, सारा सद्‌गुण है, जो कि अवधान है। उस देखने में समस्त सौंदर्य है, और सौंदर्य के साथ प्रेम है। जब प्रेम है तो आपको कुछ और करने की आवश्यकता नहीं है। तब आप जहां हैं वहीं स्वर्ग है; और इसके साथ ही समस्त खोज का अवसान है।

दूसरा प्रश्न : क्या मानव में इच्छा का होना बुनियादी बात है? इच्छा के बिना क्या हम इस संसार में कुछ भी कर पाएंगे?

क्या इस बारे में हम बात करें? इस बारे में बातचीत करें कि इच्छा क्या है, वह क्यों हमारी ज़िंदगी में इतनी महत्वपूर्ण हो गयी है, इतनी हावी हो गयी है और अपने विषय साल-दर-साल बदलती जाती है? ठीक? आप समझ रहे हैं? क्यों? और संसार के सारे साधु-संन्यासी जिन्हें गंभीर, समर्पित, ज़िम्मेदार माना जाता है, क्यों अपनी इच्छाओं का दमन करते हैं और अपनी इच्छाओं से ही प्रताड़ित रहते हैं? वे किसी भी प्रतीक, चिन्ह या व्यक्ति की पूजा कर रहे हों पर इच्छा की अग्नि उनके भीतर सुलगती रहती है। ठीक है? यह सीधी सी बात है। इच्छा के पूरे स्वरूप को समझने के लिए हमें इसके भीतर बड़ी ही सावधानी से उतरना होगा। आइये साथ मिलकर इस बारे में बातचीत करें? कृपया मेरे साथ शामिल होएं।

इच्छा के आगे मानव इतना बेबस क्यों हो गया है? एक तरफ ऐसे मनुष्य हैं जो इच्छा की हर बात को मान लेना गवारा समझते हैं और दूसरी तरफ वे जो इच्छा का दमन करना चाहते हैं। आप समझ रहे हैं? भारत के साधु-संन्यासी और बौद्ध भिक्षु, वे सारे-के-सारे कह रहे हैं कि आपको अपनी इच्छाओं को अपने वश में करना है, या अपनी इच्छा को ईश्वर में लीन कर लेना है। ये सारी बातें आप समझ रहे हैं? अपनी इच्छा को आप अपने मुक्तिदाता की पूजा-आराधना की तरफ मोड़ लें, अपनी इच्छाओं को जो इतनी शक्तिशाली हैं दबा दें, उनके खिलाफ संकल्प लें - ब्रह्मचर्य

का संकल्प, मौनव्रत, दिन में एक बार खाना आदि। आप समझे? क्या आप कभी किसी मठ में रहे हैं? नहीं? एक बार मैं एक मठ में ठहरा था, सिर्फ मनोरंजन के लिए। मैं वहां रहा, सब कुछ देखा, सुना, वे जो भी कर रहे थे वह किया। सच में वह ख़ौफनाक था। मौन रहने का संकल्प लेना और फिर कभी न बोलना – इस सबका मायने समझते हैं? किसी भी स्त्री की तरफ न देखना। इसका क्या मायने हुआ आप समझ रहे हैं? न कभी आकाश की ओर देखना, न कभी वृक्षों के सौंदर्य की ओर, मैदान में खड़े किसी अकेले दरख़्त की ओर निहारना, आप क्या महसूस करते हैं इसको कभी दूसरे से न बांटना। यह सब आप समझ रहे हैं? प्रार्थना, धर्म के नाम पर, ईश्वर के नाम पर, प्रकाश पाने के लिए, संबोधि के लिए, स्वर्ग या कुछ और की तलाश में, मनुष्य ने खुद को यंत्रणाएं दी हैं। यह सारा मामला कितना भयावह है। और इस सबकी जड़ में इच्छा है, कामना है। ठीक है? पता नहीं आपकी समझ में कुछ आ रहा है या नहीं।

भारत में, पश्चिम में, सुदूर पूरब में, लोगों ने इस आग को दबाने की भरसक कोशिशें की हैं। एक बार मैं एक अत्यधिक पढ़े-लिखे हिंदुस्तानी से मिला, वह विदेश में रह चुका था, खूब बढ़िया अंग्रेजी बोल लेता था, काफी विद्वान था। फिर भी उसने यह संकल्प लिया हुआ था कि उसे किसी शादीशुदा के घर में प्रवेश नहीं करना है। आपको हंसी आ सकती है। क्योंकि उसका मानना था कि सेक्स घ्रणास्पद है और जब वह यह बोल रहा था तो यह महसूस किया जा सकता था कि वह कितनी घोर यंत्रणाओं से गुजरा है। आप समझ रहे हैं न? यह सब आपके लिए कुछ मायने रखता है?

तो, इच्छा क्या है इस सवाल में हमें जाना है। हमारे जीवन के ये दो छोर क्यों हैं, एक तरफ दमन, नियंत्रण और दूसरी तरफ जो मर्जी हो वह करना? ऐसे गुरु भी हैं जो

कहते हैं आपकी जो इच्छा हो करो, ईश्वर का आशीर्वाद सदा आपके साथ रहेगा। और निश्चय ही वे बेहद लोकप्रिय हैं। हजारों लोग उनके पास जाते हैं और अपना सबकुछ दान कर आते हैं। आपको पता ही है कि दुनियाभर में यह हो रहा है। तो हमें इस प्रश्न में जाना होगा कि इच्छा क्या है और कि क्या यह ज़िंदगी की बुनियादी मांग है। क्या यहां तक बात साफ हुई?

तो आइये इसका पता लगाएं। क्या है इच्छा? आप समझ रहे हैं? हमने यहां इच्छा के दायरे को काफी विस्तश्त कर दिया है, संसार में क्या हो रहा है, नाइट क्लब, सेक्स, फ्री सेक्स, आप जो करना चाहें करें, गुरु आपकी मदद करेंगे, यह सब सचमुच आपको कुंठाओं से मुक्त कर देता है। इन्हें काउंटर ग्रुप कहा जाता है, आपको पता होगा। हे ईश्वर, कितना बेहूदा संसार है यह! मैं गलत भी हो सकता हूं पर ऐसा लगता है कि वे यह सवाल कभी नहीं पूछते कि इच्छा की प्रकृति, कुदरत क्या है। वह क्या चीज़ है जो इच्छा को चलाती है? आप समझ रहे हैं? कुछ पाने, कुछ हासिल करने की मांग, और साथ ही वह सत्ता जो कहती है कि मांग नहीं करनी है। ठीक है? एक इच्छा के खिलाफ दूसरी इच्छा की लड़ाई चलती रहती है। सही? क्या हम इस बात से सहमत हैं? हम लोग यहां बातचीत कर रहे हैं, मैं आपको कोई उपदेश नहीं दे रहा हूं। हम लोग साथ-साथ संवाद कर रहे हैं कि मानव में यह दोहरी, एक-दूसरे के विपरीत चलने वाली धाराएं क्यों हैं, जैसे चाहना और न चाहना, दमन करना या फिर सब कुछ खुला छोड़ देना? मेरा सवाल आप समझ रहे हैं? हमारे भीतर यह अंतर्विरोध क्यों है? क्या यह अंतर्विरोध इसलिए है कि हम तथ्यों का सामना नहीं करना चाहते? पता नहीं आपकी समझ में यह बात आ रही है कि नहीं। मैं गुस्से में हूं। यह तथ्य है। मैं हिंसक हूं। मैं ईर्ष्यालु

हूं, लोभी हूं। यह सच्चाई है। लेकिन जब मैं कहता हूं कि मैं हिंसक हूं तो तुरंत यह विचार आ जाता है कि मुझे हिंसक नहीं होना है। ठीक है न? और हिंसक न होना यानी अहिंसा एक आदर्श बन जाता है। तो हिंसा, जो कि मैं हूं, और अहिंसक होने की कोशिश के बीच संघर्ष चलता रहता है। हम ऐसा क्यों करते हैं? अ-हिंसा तो तथ्य नहीं है। मुझे मालूम है यह एक फैशन हो गया है जिसे तोलस्तोय से लेकर हिंदुस्तान में लाया गया, यानी कि हम सभी को अहिंसक बनना है जबकि तथ्य यह है कि हम वास्तव में हिंसक हैं। आप इसे स्वीकार करेंगे? तो फिर इसके विपरीत को क्यों लाया जाये? आप समझ रहे हैं? क्या यह तथ्य से भागना है? अगर यह तथ्य से भागना है तो हम क्यों भाग रहे हैं? क्या यह इसलिए हो रहा है कि हमें मालूम ही नहीं कि तथ्य का कैसे सामना किया जाए? मैं किसी चीज़ से तभी भागता हूं जब मुझे पता नहीं होता कि उसके साथ क्या करना है, और यदि मुझे पता हो कि क्या करना है तो मैं उससे निपट सकता हूं।

तो आइये पता लगाएं - ओह इसमें तो बड़ा वक्त लग जाएगा! पर मैं इसकी तहकीकात करूंगा। किसी तथ्य से कैसे पेश आया जाय, न कि उसके विपरीत से, आइये पता लगाएं। मैं हिंसक हूं। और मैं इसका विपरीत खड़ा नहीं कर रहा। क्योंकि वह विपरीत तथ्य नहीं होगा, उसकी कोई अहमियत नहीं होगी। जिस बात की अहमियत है, जो सच है, जो हकीकत है वह यह है कि मैं हिंसक हूं। ठीक? और हिंसा के क्या मायने हैं? न केवल दूसरे को नुकसान पहुंचाना, जैसे बम फेंक देना आदि जो विश्व में हो रहा है, बल्कि तुलना करना भी। ठीक? जब मैं खुद को आपसे तौलता हूं, कि आप तेज हैं, बुद्धिमान हैं, या महान हैं, तब यह तुलना मुझे कहां ले जाती है? तब मैं खुद को बुझा हुआ, मंद बना लेता हूं। ठीक? पता नहीं आपकी कुछ समझ में आ रहा है या नहीं? क्या यह आपके लिए भारी पड़ रहा है? हम क्यों

नाप-जोख करते हैं? यह सही है कि अगर आपके पास पैसा है, और आपको कार पसंद करनी है या कोई ड्रैस चुननी है तो आपको नाप-जोख करनी पड़ेगी। लेकिन अंदरूनी तौर पर, मानसिक रूप से मैं किसी से अपनी तुलना क्यों करता हूं? क्या इसलिए कि मुझे नहीं मालूम कि मुझे अपने साथ क्या करना है? आप बात समझ रहे हैं? जब आप किसी बच्चे से कहते हैं कि देखो तुम्हें अपने बड़े भाई जैसा बनना है, जो कि ज्यादातर मां-बाप करते हैं, तब उस बच्चे के साथ क्या गुजरती है? क्या कभी आपने यह सोचा है? मेरे दो बेटे हैं, या दो बेटियां हैं। मैं सबसे छोटे की तुलना बड़े बेटे से करता हूं, और कहता हूं, ''तुम्हें उसके जैसा बनना है।'' इस बर्ताव का उस पर क्या असर पड़ता है? आप समझ रहे हैं? जब मैं 'ए' से कहता हूं कि तुम्हें 'बी' जैसा बनना है तो 'ए' के साथ क्या होता है? तब वह 'बी' की नकल करने लगता है। आप एक ढर्रा बना देते हैं और यह तुलना हिंसा ही तो है। ठीक है न? आप यह देख पा रहे हैं? नहीं? नकल करना हिंसा नहीं तो क्या है। इस सबकी बारीकी में आपको जाना होगा तभी आप यह समझ पाएंगे।

जब आप हिंसा को ध्यान से देखते हैं तो वह परत-दर-परत अपने को उघाड़ती है, उस शब्द में क्या-क्या छुपा है, और ऐसी न जाने कितनी आश्चर्यजनक चीज़ें सामने आती हैं। लेकिन जब आप अहिंसा के पीछे भागते हैं जो कि एक भ्रामक चीज़ है, तथ्य का जिससे कोई लेनादेना नहीं है, तो उसका कोई मायने नहीं होता। पता नहीं आप यह देख पा रहे हैं?

आइये उस बात पर हम फिर लौटते हैं : यानी, हिंसा को आप कैसे ध्यान से देखेंगे? क्या देखने वाला उस चीज़ से अलग है जिसे हिंसा कहा जा रहा है? आप समझे? मैं

हिंसक हूं। वह शब्द अपने साथ एक प्रतिक्रिया लाता है। उस खास प्रतिक्रिया को पहचानने के लिए मैंने उस शब्द का बार-बार इस्तेमाल किया है। आप समझ रहे हैं? बार-बार उस शब्द को इस्तेमाल करके मैं उस भाव को मज़बूत बनाता जाता हूं। तो क्या मैं उस शब्द से स्वतंत्र होकर अवलोकन कर सकता हूं? यह बात आप समझ रहे हैं? नहीं, आप नहीं समझ रहे। आइये फिर वापस चलते हैं। क्या है इच्छा? कैसे वह आती है? और उसे कैसे समझा जाए, उसके साथ इस तरह कैसे जिया जाए कि न कोई दमन हो, न उसकी निंदा हो और न उसमें बहा जाए? ठीक? इसको हम ध्यानपूर्वक देखें और समझें क्योंकि जब कोई चीज़ साफ-साफ समझ ली जाती है तो आसान हो जाती है। कार के कलपुर्जों को खोलना अगर मुझे आता है - यह मैं कर चुका हूं, आधुनिक कारों के साथ नहीं जो कि बहुत जटिल होती हैं - तो कार की किसी भी ख़राबी के साथ मैं आसानी से निपट सकता हूं। उसका कोई ख़ौफ़ नहीं रह जाता। तो बड़ी सावधानी से इस समस्या को हम देखें। क्या है इच्छा? इच्छा की जड़ क्या है, उसकी शुरुआत कहां से है? ठीक है न? क्या इस बारे में हमारा संवाद हो सकता है?

हमारा सवाल है कि इच्छा की जड़ क्या है, क्या हम उस जड़ को देख सकते हैं और उसके साथ रह सकते हैं? आप समझ रहे हैं? यह नहीं कि यह गलत है या सही है, इच्छा का होना अच्छी बात है, या बिना इच्छा के मनुष्य क्या करेंगे - इस तरह के सवाल नहीं।

प्रश्नः आपके सवाल का जवाब मेरे पास है। मैं सोचती हूं कि मां से अलग होना इच्छा की शुरुआत है।

कृ.ः मां से? बच्चे को अपनी मां से इच्छाएं मिलती हैं?

प्रश्नः नहीं, इच्छा अलग होने के कारण आती हैं।

कृ.: मां से अलग होने के कारण? क्या ऐसा है? क्या यह सच है? हमें नहीं पता। बच्चों और मांओं को बीच में मत लाइये। वह दूसरा सवाल है। हम उसे तब लेंगे जब ऐसा कोई सवाल उठेगा।

हमारा सवाल है : इच्छा की जड़ क्या है? आपने कोई ख़ूबसूरत चीज़ देखी, कोई सुंदर तस्वीर, कोई सुंदर फर्नीचर या आभूषण। किसी दुकान में सजा हुआ। आपके भीतर क्या होता है? आहिस्ता-आहिस्ता आगे बढ़ें। आपकी नज़र शोकेस में सजे उस आभूषण पर गयी। एक प्रतिक्रिया उठी। ठीक? आप अंदर गये और दुकानदार को आभूषण दिखाने के लिए कहा। आपने उसे छुआ। आपमें कुछ सनसनाहट हुई। ठीक? पहले आपने देखा, आप अंदर गये, उंगलियों से उसको छुआ, तब सनसनाहट हुई। ठीक? देखना, स्पर्श और संवेदन। कृपया धीरे-धीरे आगे बढ़ें, आप इसे खुद-ब-खुद देखेंगे। फिर विचार कल्पना करने लगा कि इस आभूषण में मैं कितनी ख़ूबसूरत लगूंगी, यह मेरे हाथ में, या मेरे गले या कानों में होगा। ठीक है? तो उस क्षण इच्छा का जन्म हुआ। मैं कुछ साफ कर पा रहा हूं? संवेदन का होना स्वाभाविक सी बात है - शोकेस में उस आभूषण को देखना, अंदर जाना, उसे छूना और एक संवेदन का होना। इसके बाद विचार कूद पड़ता है, यह सब एक सेकेंड में हो जाता है, और विचार कहता है, ''मेरे उंगलियों पर यह कितना जंचेगा। कितना अच्छा हो अगर यह शानदार जेवरात मेरे पास हो।'' उस लम्हा इच्छा का जन्म होता है। सही है न? पता नहीं आप यह समझ पा रहे हैं कि नहीं? इच्छा के भीतर यदि हम आहिस्ता-आहिस्ता, एक-एक कदम रखते हुए प्रवेश करें तो हम इच्छा को जन्म लेते हुए देख सकेंगे - देखना, छूना, सनसनी का होना। विचार कार को देखता है, उसको स्पर्श करता है, चारों तरफ

घूमकर निहारता है, महसूस करता है, उसे खोलता है और तब, एक सनसनी। तब विचार कहता है, ''मैं उस कार को लेना चाहूंगा, अंदर बैठना चाहूंगा, चलाना चाहूंगा।'' आप समझ रहे हैं? यह सारा कुछ क्षण में हो जाता है, जबकि अभी हम इसे अलग-अलग कर के देख रहे हैं।

इस सारी प्रक्रिया के बारे में जब आप सजग होते हैं - यानी कि देखना, छूना, और सनसनी, विचार आपको कल्पना में कार में बिठला देता है और आप कार चला रहे होते हैं। आप समझ रहे हैं? उस क्षण जब विचार सनसनी के साथ दख़्लंदाजी करता है इच्छा की उत्पत्ति होती है। समझ गये आप? क्या यह सही है? यह सब नहीं कहना कि, क्या यह सही है, क्या यह सच्चाई है? यह सच्चाई है। आपने कोई ब्लाउज या कोई स्कर्ट देखा, या कोई अच्छी शर्ट देखी, और एक सेकेंड में आप उस सारी प्रक्रिया से गुजर जाते हैं। पर जब आप इसे धीमी गति में लाते हैं, किसी फिल्म की तरह, एक-एक दृश्य, तो आप उसकी पूरी गतिविधि को देख लेते हैं - देखना, छूना, सनसनी, छवि के साथ विचार का आना, तब इच्छा का पैदा होना। ठीक? क्या यह बात साफ हुई? मेरे कहने पर मत चलिए, यह मत बोलिए, ''आपको क्या हक है मुझे यह सब बताने का?'' यह सच्चाई है। अब हमें यह पता लगाना है कि विचार ऐसा क्यों कर रहा है। विचार किसी संवेदन या सनसनी को अपनी गिरफ्त में क्यों ले लेता है और उसे एक प्रतिमा में तब्दील कर देता है? मेरी बात आप समझ रहे हैं? क्यों? अब आप देखिए कि विचार ऐसा क्यों करता है।

प्रश्नः याद्दाश्त में फंसकर वह अपने को दोहराना पसंद करता है।

कृ.ः नहीं। क्या यह आदत नहीं है? इस गति के बारे में हमें कुछ पता ही नहीं है, कुछ होश ही नहीं है। ठीक? मेरी

निगाह तत्क्षण कहीं जाती है और विचार एवं संवेदन के बीच कोई अंतराल नहीं रह जाता। मेरी बात आप समझ रहे हैं? मुझे उम्मीद है कि आप समझ रहे हैं। क्या मैं बेवकूफी की बात कर रहा हूं या उसमें कुछ मायने भी हैं? आप ही यह तय करें - मैं जो कुछ बोल रहा हूं उस पर संदेह करें। इसलिए इच्छा से ज्यादा विचार हावी है, ताकतवर है। ठीक? पता नहीं आप यह बात देख पा रहे हैं? जिसके मायने हैं कि विचार संवेदन को ढालता है। ठीक? बीती रात आपने संभोग किया और विचार अपनी छवियों, चित्रों, चाहनाओं के साथ अभी भी जारी है।

इस तरह इच्छा और विचार साथ-साथ चलते हैं। ठीक? आप समझ रहे हैं? क्या ऐसा है? या इच्छा बिलकुल ही विचार से भिन्न है? या दोनों ही दो घोड़ों की तरह हमेशा साथ-साथ दौड़ते हैं। जब दोनों दौड़ रहे होते हैं तब विचार कहता है, ''मुझे इस पर लगाम रखनी होगी''। पता नहीं आप समझ पा रहे हैं?

इस तरह जब मैं देखने, छूने, संवेदन के होने तथा विचार द्वारा संवेदन को पकड़ लेने और फिर उसे एक छवि में तब्दील कर देने की इस पूरी प्रक्रिया के बारे में सजग होता हूं तब मुझे पता चलता है कि इच्छा का उसी क्षण जन्म होता है। तब क्या संवेदन और विचार द्वारा संवेदन को पकड़ने के क्षण के बीच एक अंतराल, एक अवकाश, एक गैप हो सकता है? आप समझ रहे हैं न मेरी बात? आप एक कार को देखते हैं, बहुत बढ़िया मॉडल, बहुत खूबसूरत पॉलिश की हुई, बारीक रेखाएं, ऐरोडायनामिक डिज़ाइन आदि। आप उसके नज़दीक जाते हैं, चारों तरफ घूमकर देखते हैं, छूते हैं, कुछ संवेदना होती है। आप वहीं पर क्यों नहीं रुक जाते? विचार इतनी जल्दी क्यों बीच में आ जाता है? इस सारी प्रक्रिया के बारे में अगर आप सजग हैं तो आप बहुत साफ-साफ देख

लेंगे कि विचार ने कब आना शुरू कर दिया। ठीक है न? जब आप इतनी नज़दीकी से देखेंगे तो विचार आने से झिझकेगा। समझ रहे हैं न आप? पता नहीं आपकी समझ में यह आ रहा है या नहीं।

जब इस सारी गतिविधि के के बारे में आप ध्यान देते हैं तो वहां किसी भी तरह के दबाव-नियंत्रण के लिए कोई जगह नहीं रह जाती। आप समझ रहे हैं न? क्योंकि जब मैं अपनी किसी इच्छा को दबाता हूं तो दबाने वाला खुद एक दूसरी तरह की इच्छा का रूप होता है। ठीक? इस प्रकार एक इच्छा का दूसरी इच्छा के साथ संघर्ष होने लगता है। लेकिन जब हम इच्छा की पूरी-की-पूरी गति को समझ लेते हैं तो एक प्रकार का अनुशासन आता है जो नियंत्रण या दबाव नहीं होता। जबकि सजगता का, इस सारी प्रक्रिया के प्रति अवधान का, अपना एक अनुशासन होता है। अरे, मैं ख़ुद से तो नहीं बात किये जा रहा? नहीं, आपने यह सब करके नहीं देखा है। यह सारा कुछ आपके लिए नया है।

प्रश्नः क्या मैं विचार के बारे में एक सवाल पूछ सकती हूं? जब हम इस टेंट से बाहर निकलें तो हम ऐसा क्या करें कि विचारों की शुरुआत ही न हो?

(कृष्णमूर्ति): उस दिन मैंन यह सब कुछ स्पष्ट किया था। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहां विचार की ज़रूरत है नहीं तो मैं और आप अंग्रेजी में बात नहीं कर पाएंगे। अपने घर पहुंचने के लिए, अपने काम-काज के लिए, अपने हुनर के लिए विचार ज़रूरी है। दुनिया की आश्चर्यजनक चीज़ों को विचार ने बनाया है - कैथीड्रल, ऐटम बम, अद्‌भुत पनडुब्बियां आदि। कैथीड्रल के भीतर जो कुछ है, सारे परिधान, और सारी पोशाकें, उस सबको भी विचार ने रचा है। और विचार ने युद्धों को भी रचा है, यानी मेरा देश और आपका देश,

मेरी जाति और आपकी जाति। तो हम कुल मिलाकर यही बात कर रहे हैं कि कहीं-कहीं जगहों पर विचार की ज़रूरत है और बाकी कहीं उसकी ज़रूरत नहीं है। विचार की कहां ज़रूरत नहीं है, यह जानने के लिए बहुत अधिक अवलोकन, बहुत अधिक अवधान और देखभाल की ज़रूरत है। ठीक? लेकिन हम सब इतने अधीर हैं कि यहां तक तुरंत पहुंच जाना चाहते हैं, जैसे सिरदर्द हुआ और झटपट कोई टिकिया ले ली। हम यह कभी नहीं पता लगाते कि सिरदर्द का कारण क्या है। आप समझ रहे हैं न? तो इच्छा की उत्पत्ति, उसके आरंभ को जब हम साफ-साफ समझ लेते हैं तो यह समझ अपनी एक व्यवस्था लाती है, और तब अनुशासन, इच्छा आदि की ज़रूरत नहीं रह जाती।

ठीक है? क्या मैं कुछ स्पष्ट कर पाया?

प्रश्नः कोई चीज़ खरीदने की इच्छा और सत्य को ढूंढने की इच्छा, इन दोनों में क्या फर्क है?

कृ.ः नीले सूट, नीली शर्ट या नीले ब्लाउज की इच्छा, तथा सत्य को पाने की इच्छा, दोनों में जरा भी फर्क नहीं है क्योंकि दोनों ही इच्छाएं हैं। मेरी इच्छा एक ख़ूबसूरत कार पाने की है और आपकी इच्छा स्वर्ग पाने की - दोनों में क्या फर्क है? हम इच्छा को, न कि उसकी विषय वस्तुओं को, समझने का प्रयास कर रहे हैं। आपकी इच्छा ईश्वर के पास बैठने की हो सकती है और मेरी इच्छा एक सुंदर बगीचे की। लेकिन हम दोनों ही इच्छा कर रहे हैं। हमें यहां इच्छा को समझना है न कि आपके स्वर्ग को या मेरे बगीचे को। इच्छा को अगर मैं समझ लेता हूं तो इससे फर्क नहीं पड़ता कि आप स्वर्ग की कामना कर रहे हैं या कुछ और की।

तीसरा प्रश्नः ईर्ष्या और अविश्वास मेरे एक रिश्ते में ज़हर घोल रहे हैं। क्या इसके अलावा कोई हल है कि मैं उस व्यक्ति के अलावा बाकी सबसे अपने को काट लूं?

(कृष्णमूर्ति): पता नहीं आप लोग क्यों हंस रहे हैं। यह रोजमर्रा के जीवन की आम बात है। ठीक है? आप इस सवाल का जवाब किस तरह देंगे? अगर यह समस्या मैं आपके सामने रखूं तो आप इससे कैसे निपटेंगे? आपकी क्या प्रतिक्रिया होगी, क्या जवाब होगा? क्या आप हंसेंगे? यह कहेंगे, ''मैं तो ईर्ष्यालु नहीं हूं''? तो आइये साथ मिलकर इस जटिल समस्या की जांच-पड़ताल करें, यह मानव जीवन से जुड़ी समस्या है। इसका स्वर्ग, निर्वाण या संबोधि से कोई लेनादेना नहीं है। आपको पता है सर, जब तक हम अपने घर को व्यवस्थित नहीं करते तब तक ध्यान और बाकी सारी चीज़ों का कोई मतलब नहीं है। सही है न? अगर मेरा घर, जो कि मैं खुद हूं, पूरी तरह से सलीके से, तरतीब से न हो, लड़ाई-झगड़े से खाली न हो, तो ध्यान का क्या मतलब रह जाता है? वह एक दूसरा पलायन बन जाएगा, एक और भ्रम। और यदि मेरा घर पूरी तौर पर तरतीब से है, उसमें झगड़े की कोई परछाईं तक नहीं है, तब ध्यान का कुछ और ही मायने होता है। पर हम सोचते हैं कि ध्यान करने से, या ईश्वर जाने और क्या करने से, हमारा घर व्यवस्थित हो जाएगा। देखिये हम अपने को कितना धोखा देते हैं। तो आइये समस्या की तह में जाएं।

ईर्ष्या और अविश्वास मेरे जीवन में ज़हर घोल रहे हैं, तो क्या उस पुरुष या स्त्री के साथ रहने के लिए मुझे खुद को सबसे अलग कर लेना होगा? हम किसी भी व्यक्ति पर कब्जा क्यों करना चाहते हैं? आखिर क्यों? कृपया ध्यान रखें कि हम आपस में संवाद कर रहे हैं। मैं अपनी पत्नी पर कब्जा क्यों जमाना चाहता हूं? और मेरी पत्नी मुझे पर अपना कब्जा जमाकर खुश होती है। क्यों?

प्रश्नः मैं अपनी एक जगह चाहता हूं और इस बात का डर भी है कि कहीं अकेला न रह जाऊं।

(कृष्णमूर्ति): इसका क्या अर्थ हुआ? देखिए श्रीमान, हम ईर्ष्या को ख़त्म करने की बात कर रहे हैं, न कि सारी ज़िंदगी यूं ही घिसटते जाने की। जैसे कि इच्छा, उसे संपूर्ण रूप से समझ लेना ताकि वह बहुत सरल हो जाए। अतः मैं पता लगाना चाहता हूं कि मैं ईर्ष्यालु क्यों हूं। मैं अपनी पत्नी को लेकर ईर्ष्या से क्यों भरा हूं, या वह मुझे लेकर? क्या इसलिए कि हम दोनों ही एक-दूसरे पर कब्जा जमाना चाहते हैं? इसका क्या मायने हुआ? मैं किस चीज़ पर कब्जा जमाना चाहता हूं? शरीर पर? कृपया मेरे साथ छानबीन करते चलें। उस शरीर पर, उस प्राणी पर कब्जा जमाने का क्या आशय है? उस पर शासन करना। ठीक है? क्या ऐसी बात नहीं है? ओह, कुछ तो समझिए। मैं उसको अपने कब्जे में रखना चाहता हूं - इसकी तह में जाइए - मैं क्यों कब्जा चाहता हूं? क्योंकि मैं अकेला हूं, उससे मुझे सुख-चैन हासिल होता है, कानूनी तौर पर, नैतिक दृष्टि से वह मेरी है, चर्च का आशीर्वाद मिल गया है, या रजिस्ट्रार का आशीर्वाद मिल गया है, और उसको मैं पकड़े रखना चाहता हूं। क्यों? क्योंकि मैं बहुत अकेला हूं? यदि मैं अकेला हूं तो उस भयानक खालीपन से, जिसकी तरफ यह शब्द 'अकेलापन' इशारा करता है, भागना चाहता हूं। और जिसकी तरफ मैं भागता हूं वह सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण बन जाती है। आप समझ रहे हैं? ईश्वर का आविष्कार कर मैं ज़िंदगी से भागता हूं और उस ईश्वर को पकड़े रखना चाहता हूं क्योंकि उसके अलावा मेरे पास कुछ है ही नहीं।

तो उस पर मैं अपना अधिकार चाहता हूं। और किसी पर अधिकार करने के क्या मायने हैं? उस पर शासन और उसके साथ अपनी पहचान बनाना। धीरे-धीरे आगे बढ़िये। ऐसा करने में मुझे एक तरह की ताकत हासिल होती है। ठीक? इस सबके के आखिर में मैं कहता हूं कि वह मेरी

है। लोगों को भी यह अच्छा लगता है कि कोई उन पर कब्जा जमाये – क्या आपको नहीं लगता? नहीं? क्या आप अपनी पत्नी से कहेंगे कि 'मेरा तुम पर कोई अधिकार नहीं है'? ओह, आप लोगों ने ऐसा कुछ कभी किया ही नहीं है। जब मैं ईर्ष्या से भर जाता हूं तो मुझे लगने लगता है कि वह कहीं और जाकर, किसी और की तरफ रुख करके या कुछ और ऐसा या वैसा कर के मुझसे मेरी स्थिरता, मेरी सुरक्षा छीन रही है – मेरे हाथ से कुछ निकला जा रहा है। वह मेरी पहचान खत्म कर रही है, मुझे अकेलेपन की ओर ढकेल रही है। मुझे उस सबसे घ्रणा होती है। इसलिए उससे मैं जलता हूं। जिसके मायने हैं नफरत, गुस्सा, हिंसा, मारपीट – हे ईश्वर! क्या आपको इस सबके बारे में पता नहीं? और मैं उसको छोड़कर जाने नहीं देता और वह मुझे नहीं जाने देती और इस तरह ज़िंदगी चलती जाती है। ईर्ष्या, अविश्वास, गहरे में अकेलेपन का एहसास और उससे भागने की कोशिश भी, यही मेरी ज़िंदगी है और इसे ही मैं रिश्ता कहता हूं, प्यार कहता हूं। आप सब समझ रहे हैं?

तो मैं एक और गहरा सवाल पूछता हूं – क्या प्रेम इच्छा है, कामना है? पता लगाइये सर। क्या प्रेम सुख है? मुझे नहीं, आपको इस सवाल का जवाब देना होगा। यह

कॉपीराइट सूचना
जे. कृष्णमूर्ति के उद्धरण अंतर्राष्ट्रीय कॉपीराइट नियम के अंतर्गत संरक्षित हैं तथा सर्वाधिकारी की लिखित पूर्वानुमति के बिना किसी भी रूप में पुनः प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं। सन् 1968 के पूर्व की कृष्णमूर्ति की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेषन ऑफ अमेरिका, ओहाय, कैलीफोर्निया का है। सन् 1968 के बाद की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेषन ट्रस्ट, ब्रॉकवुड पार्क, इंग्लैंड का है।

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया
पब्लिक गैदरिंग
दिनांक : 18 - 22 नवंबर 2008
विषय : मनुष्य-प्रकृति संबंध
स्थान : कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर सह्याद्री, पुणे
पब्लिक गैदरिंग में भाग लेने के लिए संपर्क करें:
कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर सह्याद्री, पोस्ट तिवई हिल्स, तालुका - खेड (राजगुरुनगर) जिला पुणे-410 513 फोनः 02135-28872, 288348
ईमेलः kscskfi@gmail.com वेबसाइटः www.kscskfi.com

स्वामी 'कृष्णमूर्ति फाउंडेषन इंडिया' के लिए प्रकाशक, मुद्रक प्रो. पी. कृष्णा द्वारा सत्तनाम प्रिटिंग प्रेस, एस-1/208 के-1 नयी बस्ती, पांडेयपुर, वाराणसी 221 002 से मुद्रित एवं कृष्णमूर्ति फाउंडेषन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001 (उ. प्र.) से प्रकाषित; संपादक : कृष्णनाथ

हिंदी में उपलब्ध कृष्णमूर्ति की कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

1. ज्ञात से मुक्ति	रु. 100.00
2. ध्यान	रु. 40.00
3. हिंसा से परे	रु. 90.00
4. गरुड़ की उड़ान	रु. 70.00
5. संस्कृति का प्रष्न	रु. 50.00
6. षिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य	रु. 60.00
7. षिक्षा संवाद	रु. 75.00
8. स्कूलों के नाम पत्र	रु. 60.00
9. स्कूलों को पत्र, भाग–2	रु. 40.00
10. आमूल क्रांति की आवष्यकता	रु. 60.00
11. सुखी वही जो कुछ नहीं है	रु. 25.00
12. वाषिंगटन वार्ताएँ	रु. 25.00
13. अंतिम वार्ताएँ	रु. 70.00
14. सत्य एक पथहीन भूमि है	रु. 10.00
15. मृत्यु और उसके बाद	रु. 40.00
16. जीवन भाष्य–1	रु. 70.00
17. जीवन भाष्य–2	रु. 70.00
18. जीवन भाष्य–3	रु. 80.00
19. ईश्वर क्या है	रु. 125.00
20. शिक्षा क्या है	रु. 175.00
21. ध्यान (नया परिवर्धित संस्करण)	रु. 125.00
22. आपको अपने जीवन में क्या करना है?	रु. 175.00
23. प्रथम और अंतिम मुक्ति (द्विभाषी संस्करण)	रु. 500.00

जे. कृष्णमूर्ति प्रज्ञा परिषद्

कृष्णमूर्ति फाउंडेषन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी–221001

ईमेलः kcentrevns@satyam.net.in फोनः 0542–2430289, 2430353

स्वामी 'कृष्णमूर्ति फाउंडेषन इंडिया' के लिए प्रकाशक, मुद्रक प्रो. पी. कृष्णा द्वारा सत्तनाम प्रिंटिंग प्रेस, एस–1/208 के–1 नयी बस्ती, पांडेयपुर, वाराणसी 221 002 से मुद्रित एवं कृष्णमूर्ति फाउंडेषन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001 (उ. प्र.) से प्रकाषित; संपादक : कृष्णनाथ